विश्व न्याय मंदिर
बहाई विश्व केन्द्र

अप्रैल 2002

विश्व के धार्मिक नेताओं के नाम

बीसवीं शताब्दी की स्थायी धरोहर यह है कि इसने दुनिया के लोगों को यह सोचने के लिये प्रेरित किया कि वे सभी एक ही मानव नस्ल के सदस्य हैं और यह धरती उनका साझा निवास स्थान है । चारो ओर व्याप्त अनवरत संघर्ष और हिंसा के अंधकार के बावजूद, वे पूर्वाग्रह, जो कभी मनुष्य के स्वभाव में शामिल माने जाते थे, अब हर जगह खत्म होने के कगार पर हैं । उनके साथ ही खत्म हो रहे हैं वे अवरोध जो एक लम्बे समय तक मानव–परिवार के बीच जातीय, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय आधार पर विभाजन के कारण बने थे । इतने कम समय में ऐसा मौलिक परिवर्तन, इतिहास की दृष्टि से जैसे रातोरात हुआ परिवर्तन हो, भविष्य की अनन्त सम्भावनाओं का संकेत देता है ।

यह दुःखद है कि आज सभी संगठित धर्म, जिनके अस्तित्व में आने का मूल उद्देश्य ही शांति और भाईचारे के लिये काम करना है, इस राह की सबसे बड़ी बाधा बन गये हैं । यह एक दुखदायी वास्तविकता है कि इनकी विश्वसनीयता धर्मान्धता के दलदल में खो गई है । विश्व के धर्मों में से एक धर्म की प्रशासी परिषद् होने के नाते हम यह जिम्मेदारी महसूस करते हैं कि आज धार्मिक नेतृत्व के सामने जो चुनौती खड़ी है उस पर गम्भीरता से विचार किया जाये । इस मुद्दे की, और इससे उपजी परिस्थितियों की माँग है कि हम खुलकर बात करें । हम विश्वास करते हैं कि ईश्वर के प्रति हम सब की समान सेवा–भावना यह सुनिश्चित करेगी कि जो कुछ भी हम कह रहे हैं उसे उसी सद्भाव के साथ ग्रहण किया जायेगा ।

विश्व के विभिन्न स्थानों में प्राप्त उपलब्धियों को देखते हुये इस मुद्दे पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो जाता है । अतीत में एक–आध अपवादों को छोड़कर, पुरूषों के मुकाबले औरतों को हर तरह से कम करके आंका गया, अंधविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ कर उनकी प्रतिभा कुंठित कर दी गई । उन्हे मानवीय चेतना को उसकी सम्पूर्ण क्षमता में अभिव्यक्त करने का मौका नहीं मिला । सिर्फ पुरूषों की ज़रूरतें पूरी करने तक उन्हे सीमित रखा गया । ऐसी स्थिति आज भी कई समाजों में है और रूढ़ियों के नाम पर उसकी वकालत भी की जाती है, जबकि आज विश्व स्तर पर विचार–विमर्श के बाद, स्त्री–पुरूष समानता की बात एक सर्वसम्मत व्यावहारिक सिद्धांत का रूप ले चुकी है । अधिकांश शैक्षिक समुदाय और सूचना–माध्यमों में स्त्री पुरूष को बराबर का दर्ज़ा हासिल है । सोच में आया बदलाव इतना ठोस है कि पुरूष–प्रधानता के पक्षधरों को दरकिनार कर दिये गये लोगों से ही समर्थन का मुहताज होना पड़ रहा है।

लगभग ऐसी ही हालत राष्ट्रवाद के संकुचित दायरे की भी है । विभिन्न देशों के बीच आपसी सम्बन्धों को लेकर पैदा हो रहे नित्य नये तनाव और संघर्ष के बाद लोगों के लिये यह फर्क करना बड़ा आसान हो गया है कि जीवन को उन्नत करने वाले राष्ट्रप्रेम और एक–दूसरे के प्रति घृणा फैलाने वाले

राष्ट्रप्रेम में क्या अंतर है । यहाँ तक की आज राष्ट्रीय समारोहों में भाग लेने वाले लोगों को महसूस होने वाला अटपटापन भी साफ़ देखा जा सकता है, जबकि पहले उस भागीदारी में उनका पक्का विश्वास और उत्साह झलकता था । अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में लगातार हो रहे बदलावों से यह प्रभाव और भी मजबूत हो जाता है । संयुक्त राष्ट्र के वर्तमान स्वरूप में चाहे जो भी खामियाँ हों, अतिक्रमण के विरूद्ध सामूहिक सैन्य कारवाई में चाहे वह जितना भी अक्षम हो, इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूर्ण राष्ट्रीय संप्रभुता की अंधभक्ति अब ख़त्म होने को है ।

जातीय और प्रजातीय पूर्वाग्रहों के साथ भी यही हुआ है । यहाँ तक कि इतिहास ने भी इन्हे नकारा है। अतीत के कड़वे अनुभवों ने इसमें निर्णायक भूमिका निबाही है । बीसवीं शताब्दी में आतंकवाद के साथ जुड़कर नस्लवाद इतना कलंकित हुआ है कि आध्यात्मिकता के लिये यह एक रोग बन गया । दुनिया के विभिन्न हिस्सों में आज भी एक सामाजिक विचारधारा के रूप में व्याप्त जातीयता और नस्लवाद मानव के अस्तित्व पर संकट है और दुनिया भर में इसके सिद्धांतों की इतनी भर्त्सना हो चुकी है कि कोई भी इससे जुड़ने में अपने–आप को सुरक्षित नहीं समझता ।

ऐसा नहीं है कि अतीत के अंधकार को मिटाकर प्रकाश की एक नयी दुनिया अचानक सामने आ चुकी है । अभी भी बहुत सारे लोग जातीयता, राष्ट्रीयता, लिंग और रंग तथा वर्गभेद के रचे–बसे पूर्वाग्रहों को जारी रखने में लगे हैं । हर तरह से संकेत मिलता है कि ऐसे अन्याय लम्बे समय तक होते रहेंगे, क्योंकि मनुष्य की बनायी संस्थाओं और उनके द्वारा निर्धारित किये गये आदर्शो के बीच के सम्बन्धों की एक नई व्यवस्था की शुरूआत करने और शोषितों को नई राह दिखाने की प्रकिया को शक्तिसम्पन्न करने में अभी समय लगेगा । लेकिन संतोष की बात यह है कि हम उस दहलीज को पार कर चुके हैं, जहाँ से अब पीछे हटने का सवाल ही नहीं पैदा होता । मूल सिद्धांतों की पहचान कर ली गई है । उन्हे सही दिशा में श्रृंखलाबद्ध कर लिया गया है, उन्हे प्रचार–प्रसार भी मिल रहा है। ये मूल सिद्धांत उन सक्षम संस्थाओं के अंग बनते जा रहे हैं जो मानव–व्यवहार को बदलने की क्षमता रखती हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि यह काम चाहे जितना भी कठिन या लम्बा खिंचने वाला क्यों न हो, इसका परिणाम जन–जन के आपसी सम्बन्धों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लायेगा ।

बीसवीं सदी की शुरूआत में ऐसा लगा कि पूर्वाग्रह का रूप ले चुके धर्म को परिवर्तन की धाराओं के आगे घुटने टेकने पड़ेंगे । पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक प्रगति ने साम्प्रदायिक अलगाववाद के कतिपय केन्द्रीय स्तम्भों को बुरी तरह झकझोर दिया था । आज खुद को लेकर मानव–इतिहास में जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है वह है अन्तर्धार्मिक आन्दोलनों की शुरूआत, जिसे एक महत्वपूर्ण धार्मिक विकास की संज्ञा दी जा सकती है । सन् 1893 में सुविख्यात विश्व कोलम्बियाई सम्मेलन ने ''धर्म–संसद'' को जन्म देकर सबको चकित कर दिया, यहाँ तक कि सम्मेलन के आयोजको को भी । आध्यात्मिक और नैतिक सहभागिता की इस परिकल्पना ने सभी महाद्वीपों का ध्यान आकृष्ट किया और इसने सभी वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक उपलब्धियों से भी अधिक ख्याति पाई ।

थोड़े समय के लिये ऐसा लगा कि प्रतिबंधों और रूढ़ियों की दीवारें ढह गईं । प्रभावशाली विचारको के लिये भी यह सहभागिता अनूठी और विश्व–इतिहास में महत्वपूर्ण थी । ''धर्म–संसद'' के प्रमुख

आयोजको ने कहा कि ''धर्म–संसद'' ने विश्व को धर्मान्धता से बचा लिया । पूरी आस्था से यह भविष्यवाणी भी की गई थी कि ऐसा कोई चमत्कारी नेतृत्व अस्तित्व में आयेगा जो धरती पर लम्बे अरसे से विभाजित पड़े धार्मिक समुदायों में भाईचारे की भावना जागृत करेगा, जिससे प्रगति और समृद्धि की एक नयी दुनिया के लिये नैतिक आधार बनेगा । इस तरह प्रोत्साहन पाकर एक–दूसरे के धर्म के प्रति सम्मान की भावना पल्लवित–पुष्पित हुई । अनेक भाषाओं में उपलब्ध साहित्य ने सभी धर्मों की शिक्षायें, धर्म में विश्वास करने और न करने वालों तक समान रूप से पहुँचाई । बाद में, रेडियो, टेलिविजन, फिल्म और अब इंटरनेट ने भी इन शिक्षाओं में लोगों की रूचि और बढ़ाई है । उच्च शिक्षा संस्थानों ने धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के डिग्री कार्यक्रम शुरू किये । बीसवीं शताब्दी के अंत तक तो एक ही मंच पर विभिन्न धर्मों के लोग प्रार्थना–सभाओं के लिये सामान्य तौर पर देखे जाने लगे, जो कुछ ही दशक पहले असम्भव लगता था।

लेकिन यह खेद की बात है कि इन प्रयासों में अब तक बौद्धिक एकरूपता और आध्यात्मिक प्रतिबद्धता नहीं बन पायी है । मानवजाति के सामाजिक सम्बन्धों में बदलाव लाने वाली एकता की प्रक्रिया के प्रतिकूल, साम्प्रदायिक विचारधाराओं ने हठपूर्वक मानव–एकता में बाधायें खड़ी की हैं, यह जानते हुये भी कि विश्व के सभी धर्मों के स्त्रोत और शिक्षायें एक हैं। मानवजाति का एकीकरण एक ऐसा विकास है जो सिर्फ भावुकता अथवा नीति से पैदा नहीं हुआ, बल्कि इस समझदारी से पैदा हुआ कि धरती के सभी लोगों की एक ही जाति है और वह है मानवजाति । मानव को विभिन्न समुदायों में बांटने से न तो किसी व्यक्ति को लाभ होगा, न ही किसी वर्ग को । इसी तरह, स्त्रियों की उन्नति के लिये भी समाज की संस्थाओं और प्रचलित विचारधारा, दोनो पक्षों की रज़ामंदी ज़रूरी है और दोनो को यह समझदारी अपनानी है कि जैविक, सामाजिक अथवा नैतिक आधार पर स्त्री–पुरूष की समानता को नकारे जाने की कोई वज़ह नहीं है । लड़कियों को भी लड़कों की तरह शिक्षा के समान अवसर मिलने चाहिये । ठीक इसी तरह इस विचारधारा को भी त्यागने की ज़रूरत है कि इस विकासशील विश्व सभ्यता को आधार देने में कुछ ही राष्ट्रों का योगदान है और दूसरे राष्ट्रों द्वारा इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों से कुछ लेना–देना नहीं है ।

ऐसा लगता है कि धार्मिक नेतृत्व, अधिकांशतया, ऐसे बुनियादी बदलावों को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। समाज के कुछ हिस्सों ने मनुष्य की एकता को न केवल विकासशील सभ्यता की अनिवार्य शर्त मानकर स्वीकार किया बल्कि इसे इतिहास के इस कालखंड में प्रत्येक मनुष्य का महत्वपूर्ण योगदान भी माना । फिर भी, संगठित धर्म का एक बड़ा हिस्सा भविष्य की दहलीज़ पर सत्य को पहचानने के अपने उन तथाकथित दावों और विरोधाभासों के साथ अपंग बनकर खड़ा रहा, जिसकी वज़ह से मनुष्य को बांटने वाले भीषण संघर्ष भी हुये ।

इसके परिणाम मनुष्य के अस्तित्व और हित के लिये घातक सिद्ध हुये । यहाँ उन भयानक तबाहियों का विस्तार से उल्लेख करना ज़रूरी नहीं है जो धर्मान्धता की वज़ह से मनुष्य की बदनसीब कौम को झेलने पड़ रहे हैं और जिन्होंने धर्म जैसे पवित्र विचार को बदनाम कर दिया है । धर्मान्धता की यह परिपाटी नई नहीं है । अनेक घटनाओं में से सिर्फ़ एक का उदाहरण लें । युरोप में सोलहवीं शताब्दी के धार्मिक युद्ध में महाद्वीप की तीस प्रतिशत आबादी मौत के मुँह धकेल दी गई थी । प्रत्येक व्यक्ति

को यह अवश्य सोचना चाहिये कि कट्टर साम्प्रदायिक शक्तियों ने लोगों के मन में घृणा का जो बीज बोया, उसकी फसल, लम्बे समय के बाद, क्या और कैसी हुई ।

लोगों के दिलोदिमाग के साथ किये गये इस खिलवाड़ ने धर्म को उसकी उस महत्वपूर्ण भूमिका से वंचित कर दिया जो वह दुनिया के नये सम्बन्धों को आकार देने में निर्णायक रूप से निबाह सकता था। अपने पूर्वाग्रहों के खोल में बंद धार्मिक संस्थाओं ने मनुष्य की अपार ऊर्जा को विभाजित और प्रदूषित कर दिया । इन पूर्वाग्रहों ने वास्तविकताओं को ढूंढ निकालने वाली उन बौद्धिक क्षमताओं के इस्तेमाल को हतोत्साहित कर दिया जो मानवजाति को विशिष्टता प्रदान करने वाली थीं । वर्तमान नैतिक संकट से उबरने के लिये भौतिकवाद या आतंकवाद की सिर्फ भर्त्सना करना ही काफी नहीं होगा, बल्कि लोगों को उन भयानक तबाहियों से न बचाने की जिम्मेदारी भी हमे स्वीकारनी होगी ।

ऐसे विचार, मार्मिक होते हुये भी, संगठित धर्म पर दोष कम लगाते हैं, उसकी अद्‌भुत शक्ति की याद ज्यादा कराते हैं । जैसाकि हम सभी जानते हैं, धर्म आदमी की चेतना तक पहुॅचने वाली प्रेरक शक्ति है । जब तक धर्म ने अपनी मूल भावना और अपने अलौकिक अवतारों के प्रति निष्ठा जगाये रखी तब तक इसने अपने अनुयायियों में प्रेम, क्षमा, रचनात्मक साहस, पूर्वाग्रहों पर विजय पाने की ताकत, कल्याण के लिये त्याग की भावना और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने की क्षमता को बनाये रखा। इसमें संदेह नहीं कि मानव–इतिहास के आरम्भ से अब तक के ईश्वरीय प्रकटीकरणों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव को संयत और सभ्य बनाने वाली जैविक शक्तियों पर रहा है ।

यही शक्ति, जिसने पहले इतना प्रभावशाली कार्य किया, आज भी मानवीय चेतना का एक अमिट हिस्सा है। तमाम बाधाओं और बहुत थोड़े प्रोत्साहन के बावजूद इस शक्ति ने अपने अस्तित्व के लिये जूझ रहे अनगिनत लोगो के संघर्ष को जीवित रखा और विभिन्न स्थानों पर महानायकों और संतों को पैदा किया, जिनका जीवन उन जीवनदायी सिद्धांतों का परिचायक है जो उनके धर्मग्रंथों में पाये जाते हैं । साफ है कि सभ्यता के विकास के साथ–साथ धर्म सामाजिक सम्बन्धों के ढाँचे को प्रभावित करने में भी सक्षम रहा है । दरअसल, सभ्यता में कोई भी मौलिक परिवर्तन तब तक मुश्किल है, जब तक किसी स्थायी स्त्रोत से इसे नैतिक बल न मिले । ऐसे में, क्या यह मुमकिन है कि पृथ्वी पर व्यवस्था की सदियों लम्बी चली प्रक्रिया की चरम अवस्था तक पहुँचने की राह किसी आध्यात्मिक शून्य से निकल पायेगी ? पिछली शताब्दी में दुनिया पर हावी रहे विकृत सिद्धांत अगर बिना किसी योगदान के गुज़र गये तो इससे यही स्पष्ट हुआ कि मनुष्य द्वारा ढूँढ़े गये विकल्पों से मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है ।

वर्तमान युग के लिये आवश्यक सिद्धांतों को बहाउल्लाह ने एक शताब्दी पहले ही लिपिबद्ध कर दिया था और तब से अब तक इन शिक्षाओं का व्यापक प्रसार भी हुआ हैः

> *''इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य, चाहे किसी भी नस्ल या धर्म का क्यों न हो, अपनी प्रेरणा एक ही स्वर्गिक स्त्रोत से प्राप्त करता है और एक ही प्रभु के अधीन होता है । जिन विधानों के अधीन वह होता है उनमें अंतर का कारण उस युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को माना जाना चाहिये जिसमें उन्हें प्रकट किया जाता है । सभी विधान ईश्वर द्वारा आदेशित*

हैं और उसकी ही इच्छा और उद्देश्य के प्रतिबिम्ब हैं, सिवाय कुछ के जो मानव–विकृतियों के कारण प्रतिकूल प्रतीत होते हैं । उठो, और अपनी आस्था की शक्ति के सहारे अपनी व्यर्थ कल्पनाओं के उन देवों के टुकड़े–टुकड़े कर दो, जो तुम्हारे बीच फूट के बीज बोते हैं । केवल उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करो जो तुम्हे पास लाते हैं और एकता के सूत्र में तुम्हे पिरोते हैं ।''

यह अपील दुनिया की किसी भी धार्मिक प्रणाली की मौलिक सच्चाइयों को छोड़ने की माँग नहीं करती। स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है । धर्म की अपनी आवश्यकता और अपना औचित्य है। दूसरों का विश्वास या अविश्वास किसी अन्य व्यक्ति की आत्मा को निर्देश नहीं दे सकता । ऊपर उल्लिखित शब्द उन आडम्बरों और दावों को त्यागने की अपील करते हैं जिन्होंने मनुष्य की आत्मा के चारो ओर अपनी जड़ें गहरी जमा रखी हैं, प्रेम और भाईचारे का गला घोंट दिया है और नफरत तथा हिंसा को बढ़ावा दिया है ।

बीसवीं शताब्दी के परिवर्तनकारी अनुभवों के बाद उभर रहे विश्व–समाज में अगर सार्थक धार्मिक नेतृत्व की ज़रूरत है तो हमारा विश्वास है कि धर्म के नेताओं को इस ऐतिहासिक चुनौती का जवाब देना चाहिये । यह साफ़ है कि आज बड़ी संख्या में लोग मानते हैं कि सभी धर्मों की मूल भावना एक है । यह मान्यता धर्मशास्त्रों के सैद्धान्तिक मतभेदों के समाधान से सामने नहीं आयी है, बल्कि एक–दूसरे के बढ़ते अनुभवों के अंतर्ज्ञान से और मानव–समुदाय की एकता की स्वीकृति से सामने आयी है । अतीत के विभिन्न धार्मिक सिद्धांतों, कर्मकांडों और विधि–विधानों के बीच से उभर कर यह बोध सामने आ रहा है कि आध्यात्मिक जीवन विभिन्न राष्ट्रीयताओं, संस्कृतियों और वर्गों में व्यक्त एकरूपता की तरह एक ऐसी सुरभि है जो सर्वसुलभ है । धीरे–धीरे विस्तार पा रहे, लेकिन अभी भी प्रयोग के दौर से गुज़र रहे इस विचार के अपने–आप में दृढ़ होने तथा शांतिपूर्ण विश्व के निर्माण में प्रभावकारी योगदान के लिये यह आवश्यक है कि इसे उन लोगों का भरपूर समर्थन मिले जिनकी तरफ आज भी रास्ता दिखाने के लिये पृथ्वी के लोग ताक रहे हैं ।

विश्व की प्रमुख धार्मिक परम्पराओं के बीच सामाजिक मान्यताओं और पूजा के विधि–विधानों को लेकर निश्चित रूप से व्यापक अंतर है । हज़ारों वर्षों के दौरान कई ईश्वरीय अवतारों द्वारा लगातार बदल रही सभ्यता को दिये गये मार्गदर्शन में यह अन्तर होना स्वाभाविक ही है । दरअसल, दुनिया के अधिकांश प्रमुख धर्मों के ग्रंथों में किसी–न–किसी रूप में धर्म के विकसित होते स्वरूप की चर्चा मौजूद है । पूर्वाग्रह और भेदभाव बढ़ाने के लिये सांस्कृतिक धरोहरों के दुरूप्योग को नैतिक रूप से उचित नहीं ठहराया जा सकता । वास्तव में, इन सभ्यताओं का उद्देश्य व्यक्ति की आध्यात्मिकता को समृद्ध करना है । आत्मा का प्राथमिक कर्तव्य वास्तविकता की खोज करना, सच्चाइयों के अनुरूप रहना और इस काम में औरों की कोशिश को सम्मान देना है ।

यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि अगर सभी प्रमुख धर्म मूल रूप से एक जैसे ईश्वरीय माने जायें तो बड़ी संख्या में धर्मपरिवर्तन को बढ़ावा मिलेगा अथवा ऐसा करने के लिये उन्हे सुविधायें प्रदान की जाने लगेंगी । यह सच हो या न हो, ज़्यादा महत्वपूर्ण यह है कि इतिहास ने अन्ततः उन्ही के लिये द्वार खोले हैं जो इस पार्थिव जगत से ऊपर के विश्व के प्रति सजग हैं और अपनी जिम्मेवारियां

समझते हैं । इस बात के पुष्ट और विश्वसनीय प्रमाण हैं कि सभी धार्मिक आस्थायें नैतिक आचरण को सम्पोषित करने में सक्षम हैं । लेकिन यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि किसी एक धर्मविशेष के सिद्धांत, दूसरे धर्म की अपेक्षा, धार्मिक कट्टरपन और अंधविश्वासों को कम या ज़्यादा बढ़ावा देते रहे हैं । तेज़ी से सिमट रही दुनिया में यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि परस्पर सहयोग से एक–दूसरे के नजदीक आने की एक अविरल प्रक्रिया शुरू होगी। ऐसे में, संस्थाओं को, चाहे वह किसी प्रकार की हों, निश्चित रूप से यह विचार करना होगा कि इन गतिविधियों को किस प्रकार समायोजित किया जाये कि एकता को बढ़ावा मिले । आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक रूप से सुखद और संतोषजनक परिणाम सुनिश्चित करने के लिये धरती के सभी निवासियों को एक धार्मिक सूत्र में पिरोना होगा ताकि पूरी धरती पर किसी धर्मांध और सनकी व्यक्ति का शासन न हो, बल्कि एक स्नेहशील परमात्मा के विधान का साम्राज्य हो ।

हमारे युग में मनुष्य को अलग करने वाली दीवारें ढह रही हैं । यह युग इस बात का भी साक्षी बन रहा है कि धरती के जीवन को स्वर्ग के जीवन से बिल्कुल अलग बताने वाली धारणा ध्वस्त हो रही है। सभी धर्मों के ग्रंथों ने हमेशा अपने अनुयायियों को शिक्षा दी है कि दूसरों की सेवा केवल एक नैतिक कर्तव्य मानकर न की जाये बल्कि इसे आत्मा को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग समझा जाये । आज समाज का नया प्रगतिशील पुनर्गठन इसी जानी–पहचानी शिक्षा को अर्थ का नया आयाम प्रदान कर रहा है । न्याय के सिद्धांतों पर परिचालित एक नयी दुनिया समाज को देने का पुराना सपना जैसे–जैसे हमारा वास्तविक लक्ष्य बनता जायेगा वैसे–वैसे व्यक्ति की आत्मा और उसके समाज की ज़रूरतों को पूरा करना एक स्वस्थ आध्यात्मिक जीवन का अंग बनता जायेगा ।

अगर धार्मिक नेताओं को इस चुनौती का सामना करना है तो धर्म और विज्ञान को दो ऐसे अनिवार्य साधन के रूप में मानना होगा, जिनके जरिये अंतरात्मा की शक्तियों और क्षमताओं का विकास होता है। जब–जब धर्म और विज्ञान को मिलकर काम करने दिया गया है, वे एक–दूसरे के रचनात्मक सहयोगी और पूरक बने हैं और वह काल इतिहास का एक सुखद किन्तु दुर्लभ काल रहा है । धर्म और विज्ञान, वास्तव में एक–दूसरे पर आश्रित हैं और इन दोनों के बीच कोई संघर्ष नहीं है । वैज्ञानिक प्रगति से प्राप्त होने वाली अन्तर्दृष्टि और कुशलता को हमेशा आध्यात्मिक और नैतिक मार्गदर्शन की बाट जोहनी होगी ताकि उनका समुचित उपयोग सुनिश्चित हो सके । इसी प्रकार, धार्मिक आस्थाओं को भी, चाहे वे कितने भी प्रशंसित क्यों न हों, स्वेच्छा और विनम्रता से, वैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करने और वैज्ञानिक कसौटी पर परखे जाने को तैयार रहना होगा ।

अंत में, हम उस मुद्दे पर आते हैं, जिसकी ओर थोड़े संकोच के साथ हम बढ़ रहे हैं, क्योंकि इसका लगभग सीधा सम्बन्ध हमारे अंतःकरण से है। इस संसार में मिलने वाले अनेक प्रलोभनों में धार्मिक सत्ता के इस्तेमाल का प्रलोभन धार्मिक नेताओं के सामने सबसे बड़ा प्रलोभन रहा है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । जिसने भी लम्बे समय तक गहन साधना की हो और एक या अनेक महान धर्मों के पवित्र लेखों का अध्ययन किया हो उसे इस सच के लिये प्रमाण की ज़रूरत नहीं कि धार्मिक सत्ता की शक्ति बढ़ने के साथ–साथ भ्रष्टाचार की सम्भावना भी बढ़ती जाती है । इसमें संदेह नहीं कि इतिहास में अनगिनत धर्मगुरूओं ने प्रलोभनों के खिलाफ अघोषित युद्ध लड़े । यही संगठित धर्म की रचनात्मक शक्ति का मूल स्त्रोत भी रहा और इसे संगठित धर्म की सबसे बड़ी विशेषता भी माना जाना

चाहिये । इसी तरह, अन्य धर्मगुरूओं का भौतिक प्रलोभनों से समझौता कर लेना ही कट्टरवाद, भ्रष्टाचार और हताशा के लिये ज़मीन तैयार करने का कारण भी बना है । इस दृष्टि से सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में धार्मिक नेताओं की क्षमता के महत्व के बारे में और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं बचती ।

चरित्र–निर्माण और परस्पर सहयोग से सीधे जुड़ने के कारण हर काल में धर्म ने जीवन को अर्थ प्रदान करने में निर्णायक भूमिका निबाही है । हर काल में धर्म ने अच्छाइयों का बीज बोया, गलत को गलत साबित किया और लोगों के सामने छिपी अनन्त सम्भावनाओं का द्वार खोला । धार्मिक शिक्षाओं से ही एक जागृत आत्मा को सांसारिक बंधनों को तोड़कर स्वयं को परिपूर्ण बनाने की प्रेरणा मिली है । अपने नाम के अनुरूप धर्म ने बड़े और जटिल समाजों के भिन्न–भिन्न लोगों को एक सूत्र में पिरोने वाली मुख्य शक्ति का काम किया, ताकि मुक्त हुई क्षमता को अभिव्यक्ति मिल सके । वर्तमान युग को सबसे बड़ा लाभ उस व्यापक परिदृश्य का मिला है जिससे समूची मानवजाति के लिये सभ्यता की इस लम्बी प्रक्रिया को एक ही सृजन के रूप में देख पाना सम्भव हुआ है और इसी से हमारी दुनिया का ईश्वर की दुनिया से लगातार बना रहने वाला सम्पर्क भी सम्भव हो पाया है ।

इसी संदर्भ से प्रेरणा पाकर बहाई समुदाय ने, अपनी स्थापना के समय से ही, अन्तर्धर्म गतिविधियों को बढ़ावा दिया है । एक–दूसरे के नज़दीक आने की चाह के साथ–साथ इस दिशा में उनके द्वारा किये जा रहे प्रयास को बहाई समुदाय ईश्वरीय इच्छा और मानवजाति की सामूहिक परिपक्वता मानता है । हमारे समुदाय के सदस्य यथासम्भव हर प्रकार की सहायता करते रहेंगे । हम सभी सहयोगी अपना संकल्प स्पष्ट करने की समान भागीदारी से सम्बलित हैं । आज मानव समुदाय को जिन आध्यात्मिक रोगों ने बुरी तरह ग्रस्त कर रखा है, अगर उनके निवारण में सार्थक भूमिका निभानी है तो हमें बिना किसी दुराव–छिपाव के अन्तर्धार्मिक सम्वाद को बल देना पड़ेगा कि ईश्वर एक है और तमाम सांस्कृतिक विभिन्नताओं और मानवीय व्याख्याओं के बावजूद इस तथ्य को स्वीकारना पड़ेगा कि धर्म एक है ।

हर गुजरते हुये दिन के साथ यह ख़तरा बढ़ता जा रहा है कि धार्मिक पूर्वाग्रह की लपटें पूरे विश्व को जलाकर राख कर देंगी, जिसके परिणाम अकल्पनीय हैं । ऐसे ख़तरे से किसी भी देश की सरकार अकेले नहीं निबट सकती । और न ही हमें इस भ्रम में रहना चाहिये कि एक–दूसरे के प्रति सहिष्णुता की अपीलें अकेले शत्रुता की उन चिंगारियों को बुझा पायेंगी, जो धर्म की आड़ लेकर सुलगाई जाती हैं। यह संकट सभी धार्मिक नेताओं से मांग करता है कि वे अतीत से नाता तोड़ें और समाज को यह समझाने में निर्णायक भूमिका निभायें कि जिस प्रकार नस्ल, लिंग और राष्ट्र से जुड़े पूर्वाग्रहों को समाप्त किया गया है उसी तरह धर्म से सम्बन्धित पूर्वाग्रह भी समाप्त किया जाना चाहिये । व्यक्ति की चेतना को प्रभावित करने वाली सारी सेवाओं की सार्थकता मानव–कल्याण के लिये की जाने वाली सेवा में निहित है । सभ्यता के इतिहास के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोड़ पर ऐसी सेवाओं की ज़रूरत सबसे ज़्यादा है । बहाउल्लाह कहते हैं, *''मानवजाति का कल्याण, इसकी शांति और सुरक्षा तब तक सुनिश्चित नहीं हो सकती, जब तक इसकी एकता पूरी तरह स्थापित न हो जाये ।''*

– विश्व न्याय मंदिर

विश्व के धार्मिक नेताओं के नाम

मई 15, 2002

.....
.....

आदरणीय .....

बहाई अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की प्रशासी परिषद्, विश्व न्याय मंदिर ने विश्व के धार्मिक नेताओं के नाम एक विशेष संदेश भेजा है, जो अत्यावश्यक और सर्वसामान्य चिन्ता का विषय है । आपके व्यक्तिगत विचार के लिए इस संदेश की एक प्रति संलग्न करते हुये हमें प्रसन्नता हो रही है।

इस सम्बन्ध में अगर आपका कोई प्रश्न हो या आप समझते हैं कि इस विषय पर धार्मिक नेताओं के बीच कोई सम्वाद आयोजित किया जाना चाहिये तो निःसंकोच हमसे सम्पर्क करें । धार्मिक पूर्वाग्रह और संघर्ष के कारण उत्पन्न हो रहे संकट को समाप्त करने की दिशा में हमारी सभा हर सम्भव प्रयास में सहयोग के लिये बराबर तत्पर होगी ।

शुभकामनाओं के साथ,

(.....)
महासचिव
..... के बहाइयों की राष्ट्रीय आध्यात्मिक सभा